फैज़ अहमद, जावेद अख्तरों और मुनव्वर राणाओं से बचिये

हम देखेंगे लाज़िम है कि हम भी देखेंगे
जब अर्ज-ए-खुदा के काबे से सब बुत उठवाए जाएँगे
हम अहल-ए-सफ़ा मरदूद-ए-हरम मसनद पे बिठाए जाएँगे
बस नाम रहेगा अल्लाह का जो ग़ायब भी है हाज़िर भी

ये उस नज़्म के हिस्से हैं जिसे कानपुर आईआईटी के एक मुस्लिम छात्र ने सीएए के विरोध में निकले मार्च में गाया था। इस हिस्से पर हिन्दू छात्र भड़क उठे और प्रेस को ता ता थैया करने का अवसर मिल गया। बिना इसकी चिंता किये कि आपके किये धरे का क्या परिणाम होगा, टी.वी. पर देश में फैलती साम्प्रदायिकता, असहिष्णुता की बहसें चालू हो गयीं। कहा जाता है कि यह नज़्म फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ने जिया उल हक़ के विरोध में लिखी थी। ऐसा कहने वाले मेरे विचार में उर्दू नहीं जानते। इस नज़्म में जिया उल हक़ का विरोध कहाँ है ? सांकेतिक रूप में भी और शब्दों के सीधे अर्थ में भी यह नज़्म मुहम्मद द्वारा काबे से मूर्तियों को हटाने और एकेश्वरवाद के देवता अल्लाह के स्थापित करने की बात करती है।

जावेद अख़्तर, मुनव्वर राना या इस नज़्म के पक्ष में उतरा कोई और भी बता सकता है कि “जब अर्ज़े-खुदा के काबे से, सब बुत उठवाये जायेंगे, हम अहले-सफ़ा मरदूदे-हरम, मसनद पे बिठाए जायेंगे, बस नाम रहेगा अल्लाह का” से क्या अभिप्राय है ? अगर ये नज़्म ज़िया उल हक़ के लिए है तो इसका मतलब है कि इसमें ज़िया मूर्ति और अल्लाह फ़ैज़ कहे गए हैं। न न हँसिये नहीं। स्नान करके, अगरबत्ती जला कर सच्चे मन से हाथ जोड़ कर बैठिये बल्कि सिजदे में झुक जाइये। झाँक झाँक कर अर्थ निकालिये और ज़िया तथा फ़ैज़ बरामद हो जाएँ तो मुझे भी बताइये।

इस नज़्म पर उठे विवाद में इस नज़्म और उसको पढ़ने वाले इस्लामी छात्र के हिमायती फ़ैज़ को वामपंथी बता रहे हैं। अगर यह सच है तो वामपंथी को मत-मतान्तर, मज़हबी नियमों, मज़हब से ऊपर ही नहीं इनका विरोधी होना चाहिये। कोई बतायेगा कि फ़ैज़ ने इस्लाम की जकड़बन्दियों तीन तलाक़, हलाला, परदा-प्रथा, बच्ची से शादी, पुत्र-बधू से निकाह, मुताह पर कभी, कहीं ज़बान खोली ? कहीं इस लिये कि उन्होंने जीवन का ख़ासा बड़ा हिस्सा लंदन में गुज़ारा, वहां कहीं कुछ कहा हो ? आज एक मुख्तारन माई का प्रसंग सामने आया है मगर ऐसे ज़ुल्म तो पाकिस्तान में औरतों पर सामान्य हैं। फ़ैज़

हमेशा चुप्पी क्यों साधे रहे ? सीएए क़ानून पाकिस्तान, बांग्लादेश के जिन पीड़ित हिन्दुओं के लिये लाया गया है, उन पर होने वाले ज़ुल्म पर कभी आवाज़ उठायी ?

फ़ैज़ को किसी ने नमाज़, रोज़ा, मदरसों की अक़्लबंद शिक्षा, मदरसों के कोर्स के विरोध करते देखा ? 1971 में पूर्वी पाकिस्तान में 30 लाख बंगालियों के पाकिस्तानी सेना द्वारा नृशंसतापूर्वक मारे जाने पर फ़ैज़ का कोई बयान, कोई धरना प्रदर्शन, कोई लेख किसी को ध्यान हो तो कोई बताये। कभी किसी ने उन्हें हलाल और झटका माँस दोनों स्वीकार हैं, कहते सुना है ? कभी गौ-माँस और सुअर के माँस को केवल माँस मानते देखा, पढ़ा, सुना है ? शराब पी लेना भर कम्युनिज़्म है ? फ़ैज़ सम्भवत: ऐसे ही कम्युनिस्ट रहे जैसा उनकी इस नज़्म में "अल्लाह का जो ग़ायब भी है हाज़िर भी" कहा गया है। ऐसे लोगों को कम्युनिस्ट बताना बहुत सावधानी से ग़ैर मुस्लिमों को बेवक़ूफ़ बनाने की चाल भर है।

मलयाली भाषा के प्रतिष्ठित लेखक ताकषी शंकर पिल्लई जिन्हें 1957 में साहित्य अकादमी पुरस्कार और 1984 में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला, ने ताशकंद में घटी एक घटना के बारे में लिखा है। ताकषी शंकर पिल्लई ने पाकिस्तान और बांग्लादेश के लेखकों से कहा कि हम तीनों देशों के साहित्यकारों को एक सयुंक्त बयान जारी करना चाहिए चूँकि हमारा इतिहास, संस्कृति, परंपरा एक है। इस पर पाकिस्तानी प्रतिनिधि मंडल के नेता फैज अहमद फैज अड़ गए कि हमारा इतिहास, संस्कृति, परंपरा अलग है। उनके अनुसार पाकिस्तान का इतिहास भारत से अलग था।

इस नज़्म पर फ़ैज़ के पक्ष में वाचाली कर रहे जावेद अख़्तर और मुनव्वर राना स्वयंभू मानवतावादी हैं। किसी को ध्यान है कि इन दोनों ने बांग्लादेश में हुए भयानक ज़ुल्म पर कभी ज़बान खोली ? 1989 में कश्मीर से हिन्दुओं को भगाये जाने, उससे पहले उनके लगातार नरसंहार पर इन दोनों के मुँह पर पट्टी बंधी रही। सारी उर्दू दुनिया ग़ैर मुस्लिमों के लिए विषाक्त है। ये कोई आज की बात नहीं है शुरू से ही उर्दू समाज साम्प्रदायिकता से भरा हुआ है।

मैं क्या कोई भी समझ नहीं सकता कि भारत पर आक्रमण करने वाले कमीने की प्रशंसा में कोई भारतीय कुछ कह सकता है मगर उर्दू में जो न हो सो थोड़ा है। नवाज़ देवबंदी का शेर देखिये और उर्दू दुनिया, देवबंद के चिंतन को समझिये

हमें तू ग़ज़नवी का हौसला दे
मुसलसल हार से तंग आ गये हैं {नवाज़ देवबंदी}

अंदर, बाहर दोनों से कोयले बल्कि तवे की तरह सियाह राहत इंदौरी के शेर से वातावरण के कलुष का अनुमान लगाइये

हमारे सर की फ़टी टोपियों पे तंज़ न कर
हमारे ताज अजायबघरों में रक्खे हैं {राहत इंदौरी}

बंधुओं ! उर्दू दुनिया इक़बाल, अल्ताफ़ हुसैन हाली, फ़ैज़, जावेद अख़्तर और मुनव्वर राना जैसों से भरी हुई है। यहाँ ग़ैर-मुस्लिमों को दिखाने भर के लिये सांप्रदायिक एकता की बातें होती हैं। इसी दुनिया ने

फ़ैज़ के ऊपर लाल चोंच लगाई मगर अंदर से वो चोंच सहित हरे-हरे ही थे।

(लेखक जाने माने शायर और इस्लाम विषयों के जानकार हैं)